शोध लेख : नाटक का सौंदर्यशास्त्र और उसके विभिन्न तत्व

-कृष्ण मोहन
असिस्टेंट प्रोफेसर, अध्यापक शिक्षा महाविद्यालय, मुजफ्फरपुर (बिहार), पी-एच.डी. (शोधार्थी), परफॉरमिंग आर्ट (फिल्म एंड थियेटर), म.गां.अं. हिंदी विश्वविद्यालय, वर्धा (महाराष्ट्र)
https://sahityacinemasetu.com/shodh-lekh-natak-ka-saundaryashashtra-aur-uske-vibhinn-tatva/

सौंदर्यशास्त्र स्पष्ट रूप से दो शब्द सौन्दर्य और शास्त्र के मेल से बना है। वस्तुतः सौन्दर्य है क्या? किसी भी वस्तु का वह गुण या कारण है जो प्रेक्षक को आनंद प्रदान करता है, सौन्दर्य कहलाता है। शास्त्र का सीधा मतलब होता है ज्ञान की कोई शाखा। सौन्दर्य भाववाचक होता है, वस्तुवाचक नहीं। लेकिन इसकी सत्ता वस्तु से स्वतंत्र होती भी नहीं है। जबकि सौन्दर्य वस्तु का गुण है तो उसका अस्तित्व भी वस्तु के अस्तित्व के साथ ही संयुग्मित है। विभिन्न दार्शनिक प्राचीनकाल से ही विभिन्न रूपों में इसकी चर्चा करते रहे हैं लेकिन व्यवस्थित अध्ययन की शुरुआत मध्यकाल में पश्चिमी दार्शनिक बाउमगार्टेन ने की। कई विद्वानों ने सौन्दर्यशास्त्र की परिभाषा अलग-अलग तरह से दी है। सामान्य अर्थ में, "सौंदर्यशास्त्र ललित कलाओं में निहित सौन्दर्य के सामान्य मौलिक नियमों का अध्ययन करता है"।[1]

इस तरह नाटक के सौंदर्यशास्त्र के अंतर्गत आएगा नाटक में निहित सौन्दर्य के सामान्य एवं मौलिक नियमों का अध्ययन करना। हम ब्रह्मानन्द की बात छोड़ दें तो भौतिक जगत में आनंद की उत्पत्ति तभी होती है जब इंद्रियों का संयोग उसके विषयों से होता है। लेकिन सौन्दर्यशास्त्र की सीमा में सभी इंद्रियों से संबन्धित आनंद को स्वीकार न करके सिर्फ आँख और कान से जुड़े आनंद की व्याख्या-विश्लेषण को स्वीकार किया गया है। सौन्दर्य, आनंद का उद्भावक होता है, लेकिन इसकी सृष्टि होती है कला के माध्यम से और कला साकार होती है कलाकृति के द्वारा। कलाकृति संबन्धित माध्यम के सहारे निर्मित होती है। जैसे मूर्ति, पत्थर, मिट्टी आदि से; चित्र, रंग और फलक के माध्यम से, संगीत स्वर और ऊर्जा के माध्यम से इत्यादि।

समय के साथ विभिन्न कलाओं का सौन्दर्यशास्त्र विकसित हुआ लेकिन नाटक यानि रंगमंच के सौंदर्यशास्त्र का स्वरूप आजतक स्थिर नहीं हुआ है। नाटक में विभिन्न कलाओं का संयोग होने से उन कलाओं के सौंदर्यशास्त्र के मिश्र रूप को ही नाटक का सौंदर्यशास्त्र समझा जाता रहा है। नाटक का स्वरूप और लक्ष्य अन्य कलाओं की अपेक्षा व्यापक होता है। इसलिय उसके सौंदर्यशास्त्र का स्वरूप स्थिर करने के लिए सौंदरशास्त्र के कोई एक सिद्धान्त नहीं बल्कि विभिन्न सिद्धांतों का सहारा लेना पड़ता है। ये सिद्धान्त एक दूसरे का विरोध भी करते हैं लेकिन नाट्यसौंदर्य के संदर्भ में किस एक को भी उपेक्षित नहीं किया जा सकता है।

पहला सिद्धान्त कहता है,

- सौन्दर्य वस्तुनिष्ठ नहीं व्यक्तिनिष्ठ होता है । सौन्दर्य वस्तु में नहीं दर्शक के मन में होता है। ऐसा ही विचार भरतमुनि का भी है जब वे कहते हैं कि रसानंद सहृदय प्रेक्षक को मिलता है।

दूसरा सिद्धान्त कहता है,

- सौंदर्य की उद्भावना संबन्धित कलाकृति के अवयवों के संतुलन से होता है। यह सिद्धान्त सौन्दर्य को वस्तु में निहित मानता है। यह पहली विचारधारा के विपरीत बात है। नाटक के सौन्दर्य की

बात करें तो इस सिद्धान्त के अनुसार, नाटक जिन-जिन अवयवों से मिलकर बनता है उन-उन अवयवों के संतुलित होने से उसमें सुंदरता आती है। यहाँ प्रेक्षक गौण हो गया।

तीसरे सिद्धान्त में,

- उपयोगितावाद पर विचार किया जाता है । प्राचीनकाल में यूनानी दार्शनिक प्लेटो ने कहा था वही कलाएं सुंदर हैं जो उपयोगी हैं। उनके अनुसार अनुपयोगी कलाएं मानव जीवन को बर्बाद करती है। उन्होंने बढ़ई के काम को चित्रकार और कवि के काम से उत्तम माना था। लेकिन उन्हीं के शिष्य अरस्तू ने उनकी स्थापनाओं को पलट दिया। जब इस संदर्भ में नाटक पर विचार करते हैं तो हमें अरस्तू और प्लेटो दोनों की स्थापनाओं में सामंजस्य रखकर ही आगे बढ़ाना पड़ता है। क्योकि यह सर्वमान्य मत है कि रंगकर्म सिर्फ मनोरंजन का वाहक नहीं बल्कि सामाजिक परिवर्तन का शस्त्र भी है।

बहरहाल, विद्वानों ने इन तीनों सिद्धान्त में सामंजस्य स्थापित करके नाटक के सौन्दर्यशास्त्र का जो स्वरूप स्थिर करने का प्रयास किया है, उसमें पाँच तत्वों पर विचार किया जाता है।[2] वे तत्व हैं : 1. आलेख 2. अभिनय 3. सहायक तकनीक 4. प्रेक्षागृह और 5. प्रेक्षकानुकूलता।

नाट्य आलेख : किसी भी नाट्य प्रदर्शन का आधार होता है। अगर यह उम्दा नहीं हो तो प्रदर्शन कभी अच्छा नहीं हो सकता है। आदर्श आलेख की कई महत्वपूर्ण विशेषताएँ मानी जाती हैं जैसे-

- अच्छी कहानी ।
- आदि, मध्य और अंत की व्यवस्थित योजना हो ।
- ऐसे संवाद योजना जिसमें कथन से ज्यादा अभिनय की संभावना हो ।
- छोटे-छोटे संवादों की योजना हो और दो संवाद के बीच में अनुचित मौन की योजना नहीं हो।
- पात्र और कथ्य के अनुकूल भाषा हो ।
- रंग संकेत का समुचित प्रयोग हो ।

अभिनय : आलेख, अभिनय के माध्यम से ही दर्शकों तक संप्रेषित होता है नहीं तो वह बस साहित्य होता है। बहुत बार लिखित आलेख के बिना भी सिर्फ अभिनय के माध्यम से नाटक संभव हो जाता है। इसलिए अभिनय का नाटक में केंद्रीय महत्व होता है। अभिनय में भी उसके प्रकारों, आंगिक, वाचिक और सात्विक का संतुलन होना चाहिए। अगर अभिनेता सिर्फ आंगिक-वाचिक में दक्ष हो और सात्विक का उचित प्रदर्शन नहीं करे तो अभिनय मशीनी लगने लगता है। ऐसी ही स्थिति अन्य दो अभिनय-प्रकारों की कमी से उत्तपन्न होती है। वर्तमान समय में नाट्य-सौन्दर्यशास्त्री वेश-भूषा और रूप-सज्जा यानि कि आहार्य को अभिनय-प्रकारों से इतर सहायक तकनीक के अंतर्गत मानते है।

सहायक तकनीक : इसके अंतर्गत आने वाला तत्व है – रूपसज्जा, वेश-भूषा, प्रकाश व्यवस्था, संगीत और मंच व्यवस्था। इन सब की अच्छी और संगत योजना भी सुंदर नाटक के लिए आवश्यक होता है। और इसके लिए आवश्यक होता है कि दृश्य में वर्णित स्थान, स्थिति और चरित्रों के मनोविज्ञान को गंभीरता से विश्लेषित किया जाए। सिर्फ फार्मूले में बंधकर काम करने से नाटक प्रभावशाली नहीं हो सकता है। उदाहरणस्वरूप प्रेम के दृश्य में गुलाबी रंग के प्रकाश का प्रयोग करना चाहिए, सिर्फ इस बात से काम नहीं चल सकता है। हमें यह भी देखना होगा की प्रेम की स्थिति क्या है। अगर किसी दृश्य में प्रेमी अपनी प्रेमिका को धोखा दे रहा है और दर्शक इस बात को समझते हों तो वहाँ गुलाबी रंग का प्रकाश विसंगति

पैदा करेगा जबकि सामान्य प्रकाश उसके बनावटी प्रेम में सहायक बनेगा। लेकिन सिर्फ लीक से अलग हटकर काम करने के लिए कैसा भी प्रयोग करना नाटक के लिए घातक ही होता है। अर्धरात्रि के समय के प्रेम दृश्य में संगीत के लिए राग दरबारी का विकल्प, सिर्फ मधुरता के नाम पर सुबह बजनेवाला सात्विक राग भैरव, नहीं हो सकता है। एबसर्ड नाटकों में स्थितियाँ अलग होती है लेकिन वहाँ भी हमें आलेख के हिसाब से एब्सर्डीटी के कारण और स्थिति को समझना होता है।

प्रेक्षागृह : यह भी नाट्य-सौन्दर्य के उद्भावक तत्वों में गिना जाता है। एक ही नाटक का प्रभाव प्रोसेनियाम, थ्रस्ट और एरीना थिएटर में अलग-अलग होता है। अधिकांश लोकनाटक और नुक्कड़ नाटक मूल रूप प्रोसेनियाम मंच पर उतने अच्छे नहीं लगते हैं। कई बार तो संभव ही नहीं होता है। मंच का आकार-प्रकार की अनुकूलता-प्रतिकूलता भी अपेक्षित मंच विन्यास को प्रभावित करता है। प्रेक्षागृह से संबन्धित किसी भी तरह की प्रतिकूल स्थिति में नाटक का सौन्दर्य अवश्य ही दब जाता है।

प्रेक्षकानुकूलता : यह तत्व भी नाटक के सौन्दर्य विधायी तत्वों में एक माना जाता है। नाटक को प्रेक्षकों के अनुकूल होना चाहिए। अगर ऐसा नहीं हुआ तो नाटक का लक्ष्य पूरा नहीं होगा या फिर रस निष्पत्ति बाधित होगी यानि दर्शकों को आनंद नहीं प्राप्त होगा। दोनों ही स्थिति नाट्य सौन्दर्य की विरोधी मानी जाएगी। उदाहरण स्वरूप किसी अंचल में, जहां दर्शकों का संस्कार लोक नाटकों का है या किशोरों को ज्यां-पॉल-सात्र का कोई नाटक दिखाना उचित निर्णय नहीं माना जाएगा। हंसी-मज़ाक और कामुक प्रसंगों से दर्शक का मनोरंजन भले ही हो जाए लेकिन वे कथ्य को समझ नहीं पाएंगे। इसी तरह अतिसांकेतिक नाटकों में सामान्य दर्शकों को आनंद नहीं आएगा। अतः इन स्थितियों में नाटक दर्शकों के लिए सुंदर नहीं माना जाएगा।

नाटक के इन पाँच सौंदर्यविधायी तत्वों का ध्यान रखकर ही कुशल निर्देशक किसी भी प्रदर्शन के शिल्प का गठन करता है। शिल्प को रूप भी कहा जाता है और रूप सौन्दर्य का पर्याय होता है।

सहायक ग्रंथ :

1. भटनागर, मधुर लता, 2013 ई°, ललित कलाओं का सौन्दर्य-विधान, हिन्दी माध्यम कार्यान्वय निदेशालय, दिल्ली विश्वविद्यालय, नई दिल्ली।
2. चतुर्वेदी, डॉ° ममता, 2011ई°, सौंदर्यशास्त्र, राजस्थान हिंदी ग्रंथ अकादमी, जयपुर।
3. अंकुर, देवेंद्र राज, 2006 ई°, रंगमंच का सौन्दर्यशास्त्र, राजकमल प्रकाशन, नई दिल्ली।
4. श्चनर, रिचर्ड, 2006 ई°(द्वि°स°),परफॉर्मेंस स्टडीज एन इंटरोडक्सन, रूटलेज प्रकाशन, न्यूयॉर्क।
5. शास्त्री, बाबूलाल शुक्ल, 2009 ई°, हिन्दी नाट्यशास्त्र (खंड-1), चौखम्भा संस्कृत संस्थान, वाराणसी।
6. चातक, गोविंद, 1998 ई°, रंगमंच : कला और सृष्टि, तक्षशिला प्रकाशन, नई दिल्ली।

---

[1] ललित कलाओं क सौन्दर्य विधान, पृष्ठ-6 ।

[2] रंगमंच का सौंदर्यशास्त्र, पृष्ठ-11.